गोलोक-वृन्दावन में प्रविष्ट हो जाता है।

इस सातवें अध्याय में पूर्ण कृष्णभावनाभावित होने की विधि का विशेष रूप से प्रतिपादन है। कृष्णभावना का उन्मेष कृष्णभावनाभावित भक्तों के सत्संग से होता है। ऐसा भागवत-सत्संग साक्षात् श्रीभगवान् का संग देने वाला है। फिर भगवत्कृपा से श्रीकृष्ण की परम-ईश्वरता को बोध हो जाता है। साथ ही, यह ज्ञान भी होता है कि जीव वास्तव में स्वरूप से श्रीकृष्ण का दास है, पर किसी कारणवश श्रीकृष्ण को भूल बैठता है और परिणाम में प्राकृत क्रियाओं के बन्धन में पड़ जाता है। सत्संग द्वारा कृष्णभावना का उत्तरोत्तर विकास करने पर जीव समझता है कि श्रीकृष्ण को भूल बैठने से ही वह माया के नियमों में बँध गया है। तब वह यह भी समझ सकता है कि यह मनुष्य-शरीर एक ऐसा सुयोग है, जिसके द्वारा कृष्णभावना को फिर उद्भावित किया जा सकता है; अतः अहैतुकी भगवत्कृपाकल्लोलिनी में निमज्जन के लिए इसका पूरा सदुपयोग करना चाहिए।

अध्याय में अनेक तत्त्वों का निरूपण हुआ है—आर्त भक्त, जिज्ञासु भक्त, अर्थार्थी भक्त, ज्ञानीभक्त, ब्रह्मज्ञान, परमात्मज्ञान, जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि से मुक्ति एवं भगवद्भक्ति आदि का यहाँ विवेचन किया गया। परन्तु जो वास्तव में कृष्णभावनाभावित हो गया है, उस पुरुष को अन्य पद्धतियों की अपेक्षा नहीं रहती। वह पूर्ण रूप से साक्षात् कृष्णभावनाभावित क्रियाओं के परायण होकर श्रीकृष्ण के नित्यदास के रूप में अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था में वह भगवत्कथा के श्रवण तथा कीर्तन में ही निरन्तर शुद्धभक्ति का आस्वादन करता है। उसे पूर्ण विश्वास रहता है कि केवल इतना करने से उसकी सर्वाभीष्ट सिद्धि हो जायगी। इस निश्चयात्मिका श्रद्धा को **दृढव्रत** कहा जाता है और यही भक्तियोग का प्रारम्भ है—ऐसा सम्पूर्ण शास्त्रों का निर्णय है। गीता का सातवाँ अध्याय इसी निश्चय का मूर्त सार-सर्वस्व है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः।।७।।

इति भक्तिवेदान्त भाष्ये सप्तमोऽध्यायः।।